ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-4* July- 2021
Anthology : The Research

प्रकृति–संरक्षण में सनातन–संस्कृति की भूमिका

The Role of Sanatana Sanskriti in Nature Conservation

Paper Submission: 15/07/2021, Date of Acceptance: 24/07/2021, Date of Publication: 25/07/2021

राजेश्वर सिंह
सह आचार्य,
दर्शनशास्त्र विभाग,
बी0आर0ए0 बिहार
विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

सारांश

सनातन संस्कृति की मूल्य–व्यवस्था प्रकृति के प्रति अगाध भक्ति व प्रेम से परिपूर्ण है। हम प्रकृति का आदर मातृ–देवी के रूप में करते हैं। प्रकृति के हर रूप का आदर व संरक्षण करना हमारा धर्म है।

The value system of Sanatana-Sanskriti is full with devotion and love for nature. We respect nature as mother goddess. Today, its our duty to respect and protect the every form of nature.

मुख्य शब्द : प्रकृति, संरक्षण, सनातन, संस्कृति मूल्य, निर्वहनीय विकास
Nature, Conservation, Sanatana, Culture Value, Sustainable Development

प्रस्तावना

वेदों से लेकर अद्यावत् समग्र सनातन संस्कृति प्रकृति के प्रांजल व सौरभ–संजीवनी स्वरूप के संरक्षण में सतत संलग्न रही है। इस संस्कृति की मान्यता है कि जो प्रकृति की रक्षा करता है, प्रकृति उसकी रक्षा करती है।

अध्ययन का उद्देश्य

सनातन–संस्कृति से संपोषित प्रकृति–संरक्षण के संस्कार व सतत निर्वहनीय विकास की अविरल दृष्टि को अन्वेषित करना प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य है।

विषय–विस्तार

"पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

– अभिज्ञानशाकुन्तलम्

प्रस्तुत शोध–पत्र का प्रारंभ पर्यावरण संरक्षण के प्रवीण–पुरोहित महाकवि कालिदास के उस श्लोक से कर रहा हूँ जिसमें प्रकृति एवं मनुष्य को अत्यन्त घनिष्ठ सहोदर प्रेम–बन्धन में बँधा हुआ दिखाया गया है। इस श्लोक में महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई की आज्ञा प्रकृति से माँग रहे हैं– "हे वृक्ष! जो शकुन्तला पहले तुम्हें जल पिलाये बिना स्वयं जल नहीं पीती थी, नव पल्लवों के गहने पहनने की शैकीन होने पर भी जो प्रेमवश तुम्हारे पल्लवों को नहीं तोड़ती थी, जो तुममें पहले–पहले फूल आने पर खूब उत्सव मानती थी, वह आज पतिगृह जा रही है। तुम सब जाने की अनुमति दो।"[1]

कालिदास का प्रकृति के प्रति यह सहोदर भाव वर्तमान समय में भोगवादी प्रवृत्ति के कोख से उत्पन्न पर्यावरणीय संत्रास से त्राण दिलाने का प्रस्थान बिन्दु है। आज सम्पूर्ण मानवता आत्मघाती आधुनिक भौतिक–भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति के दुश्चक्र में फँस कर नष्ट होने की कगार पर पहुँच चुकी है। सनातन संस्कृति 'पर्यावरण' की संपोषक एवं सजग संरक्षिका रही है। आज विश्व अपने संवहनीय विकासवाद (Sustainable development) के लिए सनातन–संस्कृति का मुखापेक्षी बन गया है। अस्तु, इस पत्र में सनातन संस्कृति के आलोक में पर्यावरणीय समस्या के सम्पूर्ण कलेवर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

संस्कृत हिन्दी कोश[2] के अनुसार पर्यावरण 'परि' एवं 'आवरण' दो शब्दों के योग से बना है। 'परि' का अर्थ है– सभी ओर, चारों ओर और 'आवरण' का अर्थ है– घेरा, दीवार, पर्दा, छिपाना, ढकना। इस प्रकार 'पर्यावरण' शब्द विन्यास का अर्थ है जो हमें चारों ओर से घेर कर सुरक्षा प्रदान करे। Universal Encyclopaedi[3] के अनुसार पर्यावरण के अन्तर्गत उन सभी दिशाओं, संगठनों एवं

प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो किसी जीव तथा प्रजाति के उद्भव, विकास एवं मृत्यु को प्रभावित करती हैं।

वर्तमान समय में यद्यपि पर्यावरण संकट को एक नैतिक समस्या मानकर इसका अध्ययन नीतिशास्त्र की शाखा–अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र (Applied Ethics) के अन्तर्गत पारिस्थितिकी दर्शन के रूप में किया जा रहा है। किन्तु क्या पर्यावरण की समस्या मात्र नैतिक समस्या है? क्या पर्यावरण संकट के नैतिक समाधान मात्र से समस्या दूर हो जायेगी? 'पर्यावरण असंतुलन एवं संकट का कारण मानव है' यह निर्णय सुना देने मात्र से जीवन और जगत् पर आसन्न पर्यावरणीय समस्या टल जायेगी क्या?

हाँ! प्रकृति के कमनीय रूप का, उसके सुषमा एवं सौन्दर्य का अध्ययन निश्चित रूप से मूल्य शास्त्र या सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत होना चाहिए। दरअसल, प्रकृति के लास्य एवं लालित्य का वर्णन कर मानव उसके उपकार के प्रति अपनी कृतज्ञता सदा से ज्ञापित करता रहा है। आदि काल से लेकर अद्यावत् सृजित सम्पूर्ण संस्कृत–साहित्य इसका प्रकृष्ट प्रमाण है।

किन्तु पर्यावरणीय समस्या नैतिक समस्या मात्र न होकर जीवन एवं जगत् सम्बन्धी सत्तामूलक, सृष्टिमूलक और अस्तित्वमूलक (Concerning Reality or Existence) समस्या भी है और इसलिए इसका अध्ययन अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र के साथ ही साथ तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत वस्तुनिष्ठ दृष्टि से किया जाना चाहिये। प्रस्तुत शोध–पत्र में 'पर्यावरण संरक्षण में सनातन संस्कृति की भूमिका : एक अनुचिंतन' विषय का विमर्शात्मक अनुशीलन इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर किया जा रहा है।

सनातन संस्कृति के ऊर्ध्वचेता मनीषियों का अन्तर्मन हमेशा यह मानता रहा है कि प्रकृति निर्जीव पदार्थों का पुंज मात्र नहीं, प्रत्युत वह परा जीवनी–शक्ति से, कमनीय भावनाओं से प्राणिमात्र के लिए सहानुभूति से स्पन्दित होती है। उसके स्पन्दन का विस्तार अन्न से लेकर आनन्दमय कोष तक सर्वत्र है। प्रकृति अपने स्वतन्त्र साम्राज्य में मानव की उपेक्षा कभी नहीं करती। वह तो मानव के साथ मैत्री के मधुर–सूत्र में इस प्रकार बँधी रहती है कि वह उसके दुःख में दुःखी तथा उसके सुख में सुखी रहती है। वस्तुतः निर्माण व संहार, सुख व दुःख दोनों उसकी गोद में क्रीड़ा करते हैं। प्रकृति द्वारा किये गये सृजन एवं संहार की झांकी देखनी है तो हमारे पुराण एक प्रामाणिक दस्तावेज हैं। मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ प्रकृति के सम्पूर्ण स्वरूप का अद्भुत निदर्शन करता है।

वस्तुतः सनातन संस्कृति का समग्र वैभवपूर्ण वाङ्मय प्रकृति के सुषमा एवं स्वास्थ्य दोनों के संरक्षण एवं संवर्धन में सतत संलग्न रहा है। प्रकृति का संरक्षण कैसे हो? इसके लिए ऋषि–मुनियों ने प्रकृति के भव्य दैवीय स्वरूप का यशोगान नाना रूपों में किया। अथर्ववेद[4] का ऋषि यह घोषणा करता है कि–

''माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः''

वस्तुतः भूमि को माता व स्वयं को उसके पुत्र के रूप में की गयी यह सनातनी संकल्पना पर्यावरण संरक्षण की अद्भूत परिकल्पना है। माता की भांति अपने पुत्र की निःस्वार्थ पोषण, पल्लवन एवं परिवर्धन करने वाली भूमि आज अपने पुत्रों से यह अपेक्षा करती है कि उसकी संतति उसका सम्मान व संरक्षण करे। सनातन परम्परा कहती है कि शय्या से उठकर पृथ्वी पर पैर रखने के पूर्व पृथ्वी माता का अभिवादन करें और उनपर पैर रखने की विवशता के लिए उनसे क्षमा माँगे–

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।[5]

अर्थात् समुद्ररूपी वस्त्रों को धारण करने वाली, पर्वतरूपस्तनों से मण्डित भगवान विष्णु की पत्नी पृथ्वी देवि! आप मेरे पाद–स्पर्श को क्षमा करें।

तदनन्तर, पंचमहाभूत एवं पंचतन्मात्र रूप प्रकृति का स्मरण करते हुए ऋषि स्वयं के मंगल की कामना करता है–

पृथ्वी सगन्धा सरसास्तथापः
स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः।
नभः सशब्दं महता सहैव
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।।[6]

सनातन परम्परा में पर्यावरण–संरक्षण का कितना महत्त्व है वह पद्मपुराण के इस बात से ज्ञात होता है, जब पृथ्वी का पुजारी यह कहता है कि हे माँ! हमारे अश्वों के पदाक्रान्त से और रथों के तेज चलने से जो तुम्हारी क्षति होती है, उस दुष्कृत के लिए मुझे क्षमा करें–

अश्वक्रान्ते! रथक्रान्ते! विष्णुकान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्।।[7]

वस्तुतः इस प्रकार की अनुकम्पा एवं अनुग्रह की अभिव्यंजना निश्चित रूप से मृदा संरक्षण के प्रति अथाह सजगता को अभिव्यक्त करती है जो अत्यन्त श्लाघनीय है।

सम्प्रति, नाना जीव–जन्तुओं, कीट–पतंगो का भक्षण करने वाली निरा–नग्न उपभोक्तावादी परम्पराओं ने विश्व पर्यावरण का अगाध–स्तर तक विनाश किया। जबकि सनातन संस्कृति आदिकाल से ही सभी प्राणियों को अपने जैसा देखने की, उनके संरक्षण की शिक्षा देती आ रही है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[8]

आज विश्वमानव कोविड–19 नामक जिस बीमारी से जूझ रहा है वह इसी घृणित अतिउपभोक्तावादी संस्कृति की उपज है। सभ्यता एवं संस्कृति के ऊषःकाल से ही सनातन संस्कृति ने हमें त्याग के साथ भोग की श्लाधनीय शिक्षा प्रदान की है–

ऊँ ईशा वास्यं इदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[9]

वैदिक काल में प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति इतना प्रेम, इतनी गहरी आस्था एवं विश्वास आखिर इसका कारण क्या है? वैज्ञानिकों का मानना है कि वेदों के पूर्व सिन्धुघाटी की सभ्यता का विनाश सम्भवतः वनस्पतियों एवं अन्य प्राकृतिक सम्पदा के अति दोहन के फलस्वरूप प्राकृतिक प्रकोप से हुआ। प्राकृतिक असंतुलन तथा छेड़–छाड़ का कितना भयानक परिणाम हो सकता है इसका अनुमान 7 फरवरी 2021 के चमोली जिले में ग्लेशीयर टूटने से धौलीगंगा नदी में आयी बाढ़ और उस

बाढ़ से हुई तबाही से लगाया जा सकता है। जिसमें रैणी गाँव समेत दसों गांव तबाह हो गये। मानव सहित अनगिनत जीव–जन्तु काल–कवलित हो गये। इस तबाही के पिछे ऋषि गंगा और तपोवन जैसे पावर प्रोजेक्ट्स का कितना हाथ है, सम्प्रति यह वैज्ञानिक विश्लेषण का विषय है। किन्तु यह तथ्य है कि पिछले दो दशकों से तीर्थ स्थानों का व्यवसायीकरण हुआ है, वहाँ की आबादी घनी हुई है। भागिरथी नदी के किनारे अनाधिकृत रूप से तमाम होटल बनाये गये हैं। अनियन्त्रित व अन्ध विकास से उत्तराखण्ड के सुरम्य वादियों की शांति भंग हुई है। परिणामतः हम सभी के सामने है चमोली आपदा एवं उसके पूर्व 2013 में केदारनाथ की घटना।

यदि हमें इन घटनाओं से बचना है तो प्रकृति का आदर करना सीखना होगा। प्रकृति के साथ सामंजस्य एवं संतुलन बनाना होगा। संवहनीय विकास (Sustainable development) के लिए सनातन संस्कृति को अपनाना ही होगा। वैदिक ऋषियों की भांति प्रकृति के हर रूप में परमात्मा के स्वरूप की अनुभूति करनी होगी। प्रकृति के हर रूप की पूजा करनी ही होगी। पुराकाल में प्रकृति के साथ जो कुछ भी हुआ और उसका जो कुछ भी परिणाम सामने आया सनातन संस्कृति के संपोषक शास्त्रों ने उसी का यशोगान विश्वदेव के रूप में किया। सूर्य, अग्नि, वरूण, इन्द्रादि देवों के अतिरिक्त वन, उपवन, पर्वत, नदी, वृक्षादि प्रकृति के समस्त चराचर जगत् की शांति एवं संतुलन के लिए इनकी स्तुति की गयी–

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,
सर्वं शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधिः,
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

अर्थात् हे जगत् के परम सत्ता परब्रह्म परमेश्वर, शांति स्थापित करें। तीनों लोकों में, जल में धरती में, औषधि में, वनस्पति में, उपवन में, सम्पूर्ण विश्व में, अवचेतन में शान्ति करें। जीव मात्र के हृदय में, मुझमें, तुझमें शांति। जगत् के कण–कण में शांति हो। ऊँ शान्ति शान्ति शान्ति।[10]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः संसार में जो कुछ भी है वह सब परमसत्ता प्रकृति ही है। मानव प्रकृति से अलग नहीं है। प्रकृति और उसके उपादान से भिन्न विकास विनाश ही है। विकास का अर्थ है– पर्यावरण संरक्षण के साथ विकास। प्रकृति एवं मानव के साहचर्य का विकास, दोनों के मैत्री एवं सौहार्द्र का विकास, प्रकृति का संरक्षण मानवता का संरक्षण है और प्रकृति का संहार स्वयं मानवता का संहार है। अब चुनाव मानव को करना है। आशा करता हूँ कि सनातन–संस्कृति की निर्मल–पावन–धारा धराधाम पर एक बार फिर प्रवाहित होगी और समय रहते मानव प्रकृति के साथ मैत्री पूर्ण विकास का मार्ग चुन लेगा। अन्यथा, हम सभी जानते हैं कि यदि चुनाव प्रकृति को करना पड़ा तो व्यथित प्रकृति अपना समायोजन किस रूप में करेगी, कहना मुश्किल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अभिज्ञानशाकुन्तलम्– कालिदास–4/8*
2. *संस्कृत हिन्दी कोश– पृ.सं. 580*
3. (Universal Encyclopaedia Vol. 16, p. 310) Vol 6, p. 310.
4. *अथर्ववेद 12/1/12*
5. *नित्यकर्म– पूजाप्रकाश– पं. लालबिहारी मिश्र, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 19*
6. *वामनपुराण 14/26, वही पृ. 25*
7. *पद्मपुराण, सृ. 20/155, दक्षस्मृति, 2/46*
8. *ईशा उपनिषद् 6*
9. *वही–1*
10. *यजुर्वेद, 38, 17*